# तत्त्वसार

## श्री क्षु. दयासागरजी

### एक महान आध्यात्मिक ग्रंथ

मंगलमय वस्तुओं में सर्वोत्कृष्ट वस्तु जगत में कौनसी है कि जिसके अवलंब से आत्मा का सदा के लिए ही कल्याण हो ? यह समस्या विश्व के मनुष्यों के सामने अनादि काल से उपस्थित है और उपस्थित रहेगी। किन्तु विचारशील पुरुषों ने इस समस्या को सुलझाया है। उसका प्रयोग भी किया है तथा सुयोग्य फल भी प्राप्त किया है। फिर भी यह समस्या जगत में सदा ही बनी क्यों रहे ? इसका उत्तर संभवतः यह है कि जगत के अनंत जीवोंमें से अत्यंत विरले ही पुरुष उन महापुरुषों की वाणी की तरफ ध्यान देते हैं; महान ग्रंथ 'स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा' में कहा है।

**विरला णिसुणहि तच्चं, विरला जाणंति तच्चदो तच्चं ॥**
**विरला भावहि तच्चं, विरलाणं धारणा होहि ॥२७९॥**

अर्थात विरले ही जीव तत्त्व को सुनते हैं; सुनने पर भी विरले ही तत्त्वतः तत्त्व को जानते हैं; जानने पर भी विरले ही महाभाग उसकी भावना करते हैं और सब विरले ही श्रेष्ठात्माओं को उसकी धारणा होती है। एक तरह से जगत के दुखों का कारण इस गाथा में ठीक ठीक कहा है। इस अनादि-अनंत विश्व में जीव जन्म लेते हैं—बडे होते हैं आजीविकार्थ यत्न करते हैं एक परिवार बनाते हैं—कुछ बाल-बच्चों को जन्म देते हैं—वृद्ध होते हैं—एक दिन मर जाते हैं। क्या यही यथार्थ जीवन है ? पशु-पक्षी-कृमि-कीटकादि भी आहार-भय-मैथुन-परिग्रह इन चार संज्ञाओं की कमें ही अपनी गाडी चलाते हैं। तो फिर यथार्थ जीवन कौनसा है ? ऐसी तत्त्व जिज्ञासा तो कमसे-कम उत्पन्न हुए विना कल्याण का सत्य प्रारंभ असंभव है। हम स्वयं स्वयं ही के बारे में कितनाही कम जानते हैं। एक आंग्ल चिंतक ने कहा है—

"How little do we know that which we are।"

अर्थात हम कितना कम जानते हैं जो कि हम स्वयं ही है। मैं वास्तव में कौन हूँ ? यहाँ मैं कहाँ से आया ? मेरा सत्य स्वरूप क्या ? मेरा सर्वोच्च कर्तव्य क्या ? मृत्यु के बाद क्या है ? आदि प्रश्नों के जिज्ञासा की महाज्वाला अंतर में प्रज्वलित नहीं होती तबतक कल्याणपथ का स्पर्श तक नहीं होता। जिस महान् ग्रन्थ का नीचे किंचित् परिचय प्राप्त कराना है वह 'तत्त्वसार' ग्रन्थ तो बहुत महान् है। प्रारंभिक



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवों के लिए पुराण पुरुषों के अनेकों महान् चरित्र अर्थात् प्रथमानुयोग के उत्तमोत्तम ग्रन्थ, द्रव्यसंग्रह, छहढाला, स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा, इष्टोपदेश, समाधितंत्रादि ग्रन्थ जिज्ञासा–शमन–योग्य हो सकेंगे। आवश्यक प्रारंभिक जिज्ञासा शमन के पश्चात आगे बढने के लिए उत्सुक जनों के परमावश्यक है। आगे बढनेवाले श्रेष्ठ जनों के लिए प्रकृत 'तत्त्वसार' ग्रन्थ महान् आध्यात्मिक पथ–प्रदर्शक और अखंड तथा अनंत शुद्ध चिदानंद की उपलब्धि का रहस्योद्घाटक एक महान् ग्रन्थ है इसमें कोई सन्देह नहीं। जीवन्मुक्त बन जाने की सच्ची इच्छा करनेवाले महात्मा इस 'तत्त्वसार' ग्रन्थ के वास्तव मनन से जीवनमुक्त बन सकेंगे आगे चलकर पूर्ण मुक्त भी बन सकेंगे।

## ग्रंथ–परिचय

**ग्रंथ नाम**—ग्रंथ का नाम ग्रंथकार ने स्वयं ही 'तत्त्वसार' (सुतत्त्वसार ?) प्रकट किया है। ग्रंथ का साद्यन्त रसास्वाद लेने पर ग्रंथ का नाम बिल्कुल अन्वर्थक प्रतीत होता है। एक विचारणीय बात है कि मंगलाचरण की प्रथम गाथा में ही ग्रंथकार ने "सुतच्चसारं पवोच्छामि।" ऐसा लिखा है अर्थात सुतत्त्वसार को कहता हूँ ऐसा अपना अभिप्राय व्यक्त किया है। अतः ग्रंथनाम 'तत्त्वसार' न होकर ग्रंथकार के ही शब्दों में 'सुतत्त्वसार' होना चाहिए। ब्र. शीतलप्रसादजी ने अपनी टीका में 'सु' विशेषण को 'तत्त्वसार' शब्द का विशेषण न मान कर 'कहता हूँ' इस क्रिया का विशेषण मान कर अर्थ किया है अर्थात 'सु पवोच्छामि' याने 'उत्कृष्ट रूपेन कहता हूँ'। ग्रंथकार ने पूरे ग्रंथ में ग्रंथ नाम का दो बार उल्लेख किया है। सर्वप्रथम मंगलाचरण गाथा में और सर्वान्त में उपसंहारस्वरूप गाथा में। हाँ विशेष यह है कि प्रथम गाथा में 'सुतच्चसारं' शब्द है और अंतिम गाथा में मात्र 'तच्चसारं' शब्द है। वैसे 'तत्त्वसार' नाम अधिक रूढ है ही। प्रकृत लेख में 'तत्त्वसार' इस बहुरूढ नाम का ही उपयोग किया गया है।

'तत्त्वसार' यह सामासिक पद है। इसमें दो शब्द हैं, (१) तत्त्व और (२) सार। दोनों शब्दों के समास से तत्त्व + सार = तत्त्वसार यह शब्द बना है। 'तत्त्व' यह शब्द तत् + त्व इन दो पदों के संयोग से बना हुआ है। 'तत्' याने 'वह'–अर्थात वस्तु और 'त्व' प्रत्यय का अर्थ है भाव। इस प्रकार 'तत्त्व' वस्तु का स्वभाव ऐसा अर्थ व्यक्त होता है। तत्त्व शब्द की निरुक्ति 'तस्य भावस्तत्त्वम्' इस तरह की गई है अर्थात 'तस्य' उसका 'भावः' अर्थात सो 'तत्त्वम्' तत्त्व है। प्रतिपाद्य विषय जो भी होगा उसका भाव उस नामवाले तत्त्व के अन्तर्गत आवेगा। जैसे—यदि प्रतिपाद्य विषय 'संवर' है तो संवर के बारे में जो विचार या वर्णन होगा सो सब 'संवर' नामक तत्त्व के अन्तर्गत होगा। दूसरा शब्द है 'सार' सार शब्द के कई अर्थ हो सकते हैं यथा शुद्ध, मर्म, महत्त्वपूर्ण, तात्पर्य, आदि। प्रकृत में मर्म अथवा शुद्ध ये अर्थ मुख्यरूपेण ग्रहण किये जा सकते हैं। तत्त्वसार शब्द से तत्त्वों का मर्म या तत्त्वों का निचोड अथवा शुद्ध तत्त्व यह अर्थ होता है। मौलिक ग्रंथ में वास्तव में तत्त्वों का निचोड, मार्मिक तत्त्व रहस्योद्घाटन है। अध्यात्म रसिकों के संमुख शुद्ध तत्त्व का यथार्थ चित्रण है, जिस से ग्रंथ के लिए 'तत्त्वसार' यह नाम गौरवशाली नाम यथार्थ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ग्रंथ का प्रतिपाद्य विषय

तत्त्व के स्वगत तत्त्व और पर–गत तत्त्व इस तरह दो भेद किये जाने पर भी ग्रंथकार का मुख्य दृष्टिकोण इस ग्रंथ में स्व–गत तत्त्व का विवेचन करना यही रहा है। स्व–गत तत्त्व के भी दो भेद सविकल्प और अविकल्प इस प्रकार किये गये हैं। उनमें भी अविकल्प स्व–गत तत्त्व का ही प्रधानतया वर्णन करने का ग्रंथकार का दृष्टिकोण या उद्देश रहा है और उस अविकल्प स्व-गत तत्त्व की प्राप्ति के लिये निर्ग्रन्थपद धारण करने की प्रेरणा की गयी है। सारांश, अविकल्प स्व–गत तत्त्व का यहां विस्तार से परिचय है और तत्प्राप्त्यर्थ निर्ग्रन्थ पद धारण करने के अर्थ प्रेरणा भी है। स्व–गत तत्त्व की अविकल्प दशा को ही समाधि, योग, ब्राह्मीदशा आदि नामों से कहा है। इस दृष्टि से विचार करने पर यह एक रहस्य ग्रंथ है और इसमें समाधि का, योग का, ब्राह्मीदशा का रहस्य प्रगट किया है। ऐसे रहस्यों का उद्घाटन पात्र व्यक्तियों के लिए ही होता है। जो निर्ग्रन्थ पदधारणोत्सुक है या जो निर्ग्रन्थ मुनि बन चुके हैं किन्तु अविकल्प स्व–गत तत्त्व के आनंदरसास्वाद से अभी वंचित हैं उनके लिये यह ग्रन्थ महान मार्ग प्रदर्शक है।

सर्वप्रथम मंगलाचरण–गाथा में वंदन एक सिद्ध भगवान को नहीं अपितु अनेक सिद्धों को किया है। इससे दो बातें सिद्ध हो जाती हैं। पहली बात यह कि यह अध्यात्म प्रधान महान् ग्रंथ होने से यहाँ पूर्ण आदर्श रूप जो सिद्ध भगवान उन्हीं को वंदन करना समुचित है। दूसरी बात यह कि एकेश्वरवादी अन्यान्य लोग एक ही ईश्वर मानते हैं वैसी कल्पना जैन दर्शन में नहीं है। जैन दर्शन में हर एक सुपात्र भव्यात्मा यथार्थ व निर्दोष पुरुषार्थ से आत्मसिद्धि कर सिद्धपद–परमात्मपद प्राप्त कर सकता है। मुक्ति का द्वार सबके लिए खुला हुआ है। अतः परमात्मा या सिद्ध एक नहीं अनेकों होने से सिद्धों को वंदन किया है। मंगलाचरण में ही सिद्धों ने सिद्धि किस उपाय से प्राप्त की यह बताने के लिए गाथा के पूर्वार्द्ध में बताया है कि उन्होंने ध्यान की अग्नि में अष्ट कर्मों को दग्ध कर निर्मल सुविशुद्ध आत्मस्वभाव को प्राप्त किया अर्थात् सिद्धपद प्राप्ति का उपाय है ध्यान। इससे एक दृष्टि से ग्रंथकार ने यह भी सूचित किया है कि यह 'तत्त्वसार' ग्रंथ ध्यान ग्रंथ है। पूरे ग्रंथ में ध्यान का ही प्रमुखता से वर्णन आया हुआ होने से इस ग्रंथ को ध्यान ग्रंथ–A Book of meditation या योग रहस्यशास्त्र Mysterious science of Yoga कह सकते हैं। जैन धर्म में जैसे विश्वश्रेष्ठ धर्म में जो कुछ मौलिक ध्यानग्रंथ या योगग्रंथ हैं उनमें इस ग्रंथ का स्थान भी उच्च श्रेणी में है।

**संक्षेप** :–प्रथम गाथा के बाद पूर्वाचार्यों ने तत्त्वों के बहुत भेद भी कहे हैं किन्तु यहाँ स्व-गत तत्त्व और पर-गत तत्त्व अर्थात निजआत्मा और पंचपरमेष्ठी इस तरह तत्त्व के दो ही भेद हैं। पर-गत तत्त्व जो पंच परमेष्ठी उनकी भक्ति बहुपुण्य बंध का हेतु है और परंपरा से वह मोक्षका कारण भी है।

स्व-गत तत्त्वके 'सविकल्प' और 'अविकल्प' इस तरह दो भेद हैं। सविकल्प स्व-गत तत्त्व आस्रव से सहित है और अविकल्प स्व-गत तत्त्व आस्रव से रहित है इसका स्पष्टीकरण है। इस ग्रंथ का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है आस्रव रहित अविकल्प स्व-गत तत्त्व। वह अविकल्प स्व-गत तत्त्व क्या है और कैसा है इसका बहुत सुंदरता से वर्णन है जो कि मार्मिक है। आठवी गाथा में उसके नामांतर बताए हैं। तत्त्वों में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सारभूत तत्त्व जो अविकल्प स्व-गत तत्त्व ही है और वही मोक्ष का साक्षात् कारण है। उसकी प्राप्ति के लिए कौनसी महत्त्व की शर्त को पूरा करना परमावश्यक है इस बात को स्पष्ट किया है। दसवी व ग्यारहवीं गाथाओं में उस शर्त का लक्षणादि बताते हुये स्पष्टीकरण किया गया है। गाथा बारहवीं और उसके आगे की गाथा तेरहवीं ये दो गाथाएँ बडी ही मर्मभरी हैं। कोरे नियतिवाद से काम नहीं चलता। बाह्य चारित्र द्रव्य-चारित्र की–क्रियाकलाप की अपनी विशेषता है। जो जीव व्यवहार चारित्र को तो अंगीकार करना नहीं चाहते और शुद्धोपयोग की तो प्राप्ति नहीं वे बुरी हालत में फसकर अपना अकल्याण ही कर लेते हैं। मोह कब कम होगा यह बताते हुये कहा है कि जब काललब्ध्यादि निकट होंगे तब मोहादि की मात्रा कम हो जायगी। फिर भी अगली गाथा में कहा है कि पंगु-अपाहिज आदमी का जैसे मेरू पर्वत के शिखरपर चढने की इच्छा करते बैठना व्यर्थ है वैसे ही बिना पुरुषार्थ के, बिना ध्यानादि सामायिक व्रतादि के कर्मक्षयरूप आत्मसिद्धि असंभव है। तात्पर्य बिना समीचीन पुरुषार्थ के काललब्धि आदिका कोई अर्थ नहीं है। अतः मुक्त होने के लिए पुरुषार्थ की ही प्रमुखता है, अनिवार्य आवश्यकता है। इस पंचम काल में ध्यान नहीं है ऐसा मिथ्या राग अलापने वालों को जोरदार उत्तर दिया है। ये गाथाएँ विख्यात भी हैं जिनमें वर्तमान में ध्यान का सद्भाव व तदर्थ प्रेरणा है।

यहाँ से आगे अर्थात् गाथा १७ से गाथा ६५ तक ध्यान करने की विधि, ध्यान की गूढ प्रक्रियाएँ, ध्यानार्थ आवश्यक सामग्री, ध्यान के साधक–बाधक कारणादि का विविध प्रकारों से, दृष्टांतों आदि द्वारा वर्णन किया है। यहाँ संक्षेप से इतनाही कहा जा सकेगा कि यह वर्णन अत्यंत महत्त्वपूर्ण व गम्भीर है। भव्यों को प्रत्यक्ष सूक्ष्म स्वाध्याय से उससे महान् लाभ उठाना चाहिए। इसमें कई गाथाएँ गूढ हैं जिन्हें इस ग्रन्थ में प्रकट किया गया है। और परमानन्द प्राप्ति कब होती है यह बताया है। गाथा ६६ व ६७ में जीवन्मुक्त परमात्मा व पूर्ण मुक्त परमात्मा का वर्णन है। गाथा ६८ से ७१ तक सिद्ध पद के बारे में विशेष वर्णन है। गाथा ७२ वी में मंगलाचरण के समान अंत में पुनश्च सिद्धवन्दना की गयी है। ७३ वीं गाथा में स्व–गत, पर–गत तत्त्व की महत्ता को प्रकट कर वे चिरकाल जयवंत रहे यह मंगल भाव अभिव्यक्त किया है। ७४ वीं अंतिम गाथा में मंगलाशीर्वाद अभिव्यंजित किया है कि जो जीव इस तत्त्वसार की भावना करता है वह सम्यग्दृष्टि महात्मा शाश्वत सुख को प्राप्त होता है। ग्रंथकार का इस ग्रंथ में प्रधानोद्देश था अविकल्प स्व–गत तत्त्व की प्राप्ति ही तीन लोक में तीन काल में सारभूत होने से तत्प्राप्ति का उपाय जो गूढ ध्यानमर्म उसे बताना और तदर्थ निर्ग्रंथ पदधारण की प्रेरणा करना। ग्रंथ के स्वाध्याय से स्पष्ट पता चल जाता है कि ग्रंथकार ने अपने उद्देशपूर्ति के लिए पर्याप्त सम्यक् प्रयत्न किया है और उसमें बहुत अच्छी सफलता भी संपादन की है।

## ग्रंथ की विशेषताएं

इस ग्रंथ में मात्र तत्त्व ही नहीं प्रत्युत तत्त्वों का सार बताया है और यही मंगलाचरण गाथागत नाम का स्वीकार करें (सुतत्त्वसार) तो कहना पडेगा कि इस ग्रंथ में केवल साधारण रूपसे ही तत्त्वों का सार नहीं बताया है अपितु सुष्ठु रूपेण तत्त्वों का सार बताया है। यह इस ग्रंथ की पहली विशेषता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधारण रूप से 'प्रतिपाद्य विषय का भाव सो तत्त्व' 'तस्य भावः तत्वम्'। इस निरुक्ति के अनुसार किसी भी प्रतिपाद्य विषय का भाव तत्त्व कहला सकता है। इस दृष्टि से जगत की कोई भी चीज, कोई भी बात तत्त्व कहला सकती है और तब तो अनंतों प्रतिपाद्य विषय होंगे, अनंतों तत्त्व बन सकेंगे। किन्तु जैन दर्शन में मोक्षमार्ग के प्रयोजनभूत जो बातें हैं केवल उन्हीं को 'तत्त्व' के अन्तर्गत स्वीकार किया है। मोक्ष प्राप्ति के दृष्टि से जिन बातों का सम्यग्ज्ञान परमावश्यक है ऐसी बातें सात हैं जो 'सप्त तत्त्व' नाम से सुविख्यात हैं। श्रीमदुमास्वामी का 'तत्त्वार्थसूत्र' प्रसिद्ध ग्रंथ इन्हीं सप्त तत्त्वों को सांगोपांग वर्णन करनेवाला है एवं अन्यान्य अनेकों जैनाचार्यों के ग्रंथ सप्त तत्त्वों के प्रतिपादनस्वरूप हैं। उन सप्त तत्त्वों के नाम हैं—(१) जीव, (२) अजीव, (पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल) (३) आस्रव, (४) बंध, (५) संवर, (६) निर्जरा, (७) मोक्ष। यह सप्त तत्त्व-परिपाटी जैन जगत में सुपरिचित है। किन्तु 'तत्त्वसार' ग्रंथ में तत्त्व विभाजन अद्भुत नवीन किया है। आचार्य देव ने तत्त्वों को दो विभागों में विभाजित किया है। (१) स्व-गत तत्त्व और (२) पर-गत तत्त्व। यह स्व-गत तत्त्व में निजआत्मा लिया गया है। अब परगत तत्त्व के विषय में तर्क हो सकता है कि निज आत्मा के अतिरिक्त शेष समस्त आत्माएं या समस्त परद्रव्य आते होंगे। किन्तु यहाँ भी आचार्यवर का विशेष दृष्टिकोण है। परगत तत्त्व में समस्त परमात्माएँ या परद्रव्य न लेकर पूर्ण शुद्धात्म प्राप्ति की दृष्टि से प्रयोजनभूत-आराध्यस्वरूप जो परम पद में स्थित पंचपरमेष्ठी अर्थात् अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधु उनका ग्रहण किया है। सारांश स्वगत तत्त्व में निजात्मा और पर-गत तत्त्व में पंचपरमेष्ठी ऐसा तत्त्वों का विभाजन यह ग्रंथ की दूसरी विशेषता है।

स्व-गत तत्त्व और पर-गत तत्त्व इन दो प्रकार के तत्त्वों में से इस ग्रंथ का प्रतिपाद्य विषय विशेषता स्व-गत तत्त्व है, पर-गत तत्त्व नहीं। ग्रंथ में कुल चौहत्तर गाथाएँ है जिनमें मात्र एक ही गाथा पर-गत तत्त्व के अर्थात् पंचपरमेष्ठी के संबंध में आयी है। अतः स्व-गत तत्त्व का विवेचन अर्थात निज आत्म तत्त्व का सारभूत विवेचन है यह इसकी तीसरी विशेषता है।

हेयोपादेय का विचार श्रद्धान व चारित्र इन दो दृष्टियों से करना योग्य है। अशुभ शुभ (अर्थात् पाप व पुण्य) ये दोनों शुद्धात्म प्राप्ति के लिए श्रद्धान की अपेक्षा हेय है, और शुद्ध (शुभाशुभरहित, पाप पुण्यरहित आत्मदशा) सर्वथा उपादेय है। किन्तु पुण्य या शुभ ? चारित्र की अपेक्षा शुभाचार या पुण्यक्रिया न सर्वथा हेय है और न सर्वथा उपादेय है, प्रत्युत कथंचित् हेय है और कथंचित् उपादेय है। शुद्धात्मस्वरूप परमणता जिस काल में नहीं है उस काल में अशुभ से या पाप से बचने के लिए शुभ या पुण्य उपादेय है। षष्ठ गुणस्थानवर्ती मुनिराज तक की शुभ या पुण्य का अवलंब चारित्र की अपेक्षा बना रहता है। ग्रंथकार ने पंचपरमेष्ठी की भक्ति को बहु पुण्य का कारण और परम्परा से मोक्ष प्राप्ति का भी कारण बताया है। अतः पुण्य का संक्षेप में श्रेष्ठ जनयोग्य संतुलित और निर्दोष विवेचन यह इस ग्रंथ की चौथी विशेषता है।

जो पंचपरमेष्ठी की भक्ति से भली भाँति परिचित हैं ऐसे जनों को निर्ग्रन्थ पद धारण करना परमावश्यक है। मुख्यतया निज-तत्त्व की प्राप्ति के लिए निर्विकल्प निजतत्त्व का सुपरिचय प्राप्त कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसमें रमणकर शुद्ध चिदानन्द लाभ करना चाहिए। इस दृष्टि से पंच–परमेष्ठी की भक्ति में सुपरिपक्व बने पात्र आत्माओं को निर्ग्रंथ पद के लिए प्रेरणा करना अविकल्प निज–तत्त्वोपलब्धि का रहस्य बता देना यह ग्रन्थ की पाँचवी विशेषता है।

ग्रन्थ का रचना कौशल्य, भावगांभीर्य और आध्यात्मिक सौंदर्य भी अत्यंत अवलोकनीय है। गम्भीर दृष्टि से देखने पर समस्त चौहत्तर गाथाओं में पूर्ण सुसंगति और सुसूत्रता का सुन्दर प्रवाह दृष्टिगत होता है। जिससे आचार्यवर का रचना चातुर्य गुण प्रकट होता है। यह इस ग्रन्थ की छठी विशेषता है। प्रसादगुणयुक्त सीधि–सादी–सरल गाथाएँ, अध्यात्म रस से ओतप्रोत माधुर्य गुण से अलंकृत भाषा और पुरुषार्थ की प्रेरणादि करते समय प्रकट हुआ ओज गुण आदि साहित्य के भी उचित गुण इस रचना में शोभायमान हैं यह भी विशेषता है। इस प्रकार इस महान् आध्यात्मिक ग्रन्थ की कुछ प्रमुख विशेषताओं का विहंगमावलोकन किया।

## ग्रंथकार–परिचय

इस महान् आध्यात्मिक ग्रंथ के रचयिता हैं अध्यात्म मर्म के महान् आचार्य श्रीमद् देवसेनाचार्य। आपके जन्मस्थान का वर्णन नहीं मिलता किन्तु आपके रचित 'दर्शनसार' ग्रंथ के अंत में वह ग्रंथ 'धारा' (मालवा) नगरी के भ. पार्श्वनाथ मंदिर में रचित हुआ ऐसा उल्लेख होने से वहीं कहीं आसपास में आपका जन्मस्थान हो सकता है। किन्तु साधुजन भ्रमणशील होने से वहाँ के वास्तव्य में ग्रंथ रचा होगा यह भी कह सकते हैं। अतः जन्मस्थान के निश्चित प्रमाण नहीं मिले हैं। लेकिन अनेकों बातों पर से आप दक्षिण भारत निवासी होंगे यों प्रतीत होता है। काल विक्रम की १० वीं शताब्दि है यह 'दर्शनसार' ग्रंथ से सिद्ध है।

'दर्शनसार' ग्रंथ से आप के गुरु श्री विमलसेन थे यह भी स्पष्ट सिद्ध है।

'दर्शनसार' ग्रंथ के जैनाभास खंडन से आप 'मूलसंघ' के आचार्य थे यह प्रतीत होता है। भ. कुंदकुंद स्वामि की महिमा को आपने दर्शनसार की ४३ वी गाथा में गाया है जिससे आप कुंदकुंदाम्नाय के थे ऐसा स्पष्ट होता है।

आप बहुश्रुत थे। आपकी सारी रचनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। (१) दर्शनसार (२) भाव संग्रह (३) आलाप पद्धति (४) नयचक्र (५) आराधनासार (६) तत्त्वसार आदि रचनाएँ आज उपलब्ध हैं। इनके अतिरिक्त 'ज्ञानसार' व 'धर्मसंग्रह' नाम के ग्रंथों का भी आपके नाम पर उल्लेख मिलता है किन्तु ये ग्रंथ अभी अनुपलब्ध हैं।

तात्पर्य आचार्यवर्य श्रीमद्देवसेनाचार्य मूलसंघीय, कुंदकुंदाम्नायी, श्रीविमलसेन गुरु के शिष्य, बहु-दर्शन परिचित, न्याय के गंभीर विद्वान, कर्मसिद्धांत के सूक्ष्म ज्ञानी, सफल विपुल ग्रंथ निर्माणक महान ग्रंथकार व जैनाचार्य थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## उपसंहार

यह ग्रंथकार श्रीमद्देवसेनाचार्य देव का अति संक्षेप में परिचय है। माणिकचंद दिगंबर जैन ग्रथमाला के ग्रंथों से तथा सोलापुर के मराठी ग्रंथादि से इस प्रबंधार्थ सामग्री, सहायता ली गयी है एतदर्थ उनका उल्लेख उचित ही है। छद्मस्थ त्रुटियों के लिए लेखक क्षंतव्य है। अनंत काल तक अखंड आनंदोपलब्धि चाटनेवाले जिज्ञासु और पौरुषपात्र भव्य जीवों को मूल ग्रंथ का स्वाध्याय करना चाहिए। देहग्रहण, देहत्यजन के महादुःखकारी अनादि दुष्ट चक्र से मुक्त होकर शाश्वत सुखी होना चाहिए यही मंगल दृढ भावना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org